International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 02(II), April - June, 2022, pp. 77-84

ज्ञानाश्रयी काव्य धारा के संत और ओशो

भानु प्रकाश शर्मा*

सार

ज्ञानाश्रयी काव्य धारा जिसे निर्गुण संत धारा एवं संत काव्य धारा के नाम से भी जाना जाता है, यह हिंदी साहित्य की अनमोल निधि है। हजारी प्रसाद द्विवेदी और पीतांबर दत्त बड़थ्वाल जैसे विभिन्न आलोचकों ने इस धारा को विश्लेषण करने का प्रयास किया है। फिर भी ऐसे कई प्रश्न है, जिनका उत्तर आलोचक सम्यक रूप से नहीं दे पाए। जैसेज्ञानाश्रयी धारा में 'ज्ञान' शब्द कौन से गुढार्थ प्रकट करता है?या संत काव्य की गुणवत्ता पर संत कवियों के बेपढ़े–लिखे होने का क्या कोईप्रभाव है? सौभाग्य से संत काव्य दर्शन पर आचार्य रजनीश जिन्हें ओशो के नाम से जाना जाता है, का अद्भुत साहित्य हमारे सामने आता है। ओशो ने विभिन्न आयामों से ज्ञानाश्रयी संत कवियों के अध्यात्म–दर्शन का विश्लेषण किया है। वे तर्कपूर्ण ढंग से स्पष्ट करते हैं कि संत कवि अनपढ़ या अशिक्षित होकर भी उपनिषदों के ऋषि के समान उत्कृष्ट हैं। संत काव्य के आलोचक'माया' तत्व को प्रायः भ्रम या इल्यूजन के अर्थ में ग्रहण करते हैं, परंतु ओशो तर्कपूर्ण ढंग से सिद्ध करते हैं कि माया के लिए सम्मोहन शब्द उपयुक्त है। "अंग्रेजी में एक शब्द है, हिप्नोसिस। मैं माया का अर्थ हिप्नोसिस करता हूं, सम्मोहन। माया का अर्थ इलूजन नहीं करता, माया का अर्थ भ्रम नहीं है। माया का अर्थ है, सम्मोहन। माया का अर्थ है, हिप्नोटाइज्ड हो जाना।" इसी प्रकार परमात्मा प्रकाश है, इस सिद्धांत के गूढ़ रहस्य को वह सामने लाते हैं। लगभग सभी संतो की महिमा को ओशो ने नई दृष्टि प्रदान की है।वे कहते हैं कि संतों कीभाषा पर मत जाना, भाव पर जाना। काव्यी फूटा उनसे! जब दीया भीतर जलता है, तो रोशनीकृउसकी किरणें बाहर फैलनी शुरू हो जाती है। वही संतों का काव्यन है।प्रस्तुत आलेख संत कवियों को ओशो की रहस्य पूर्ण दृष्टि से देखने का प्रयास है।

शब्दकोशः *संत काव्य, ज्ञानाश्रयी काव्य धारा, अध्यात्म दर्शन, ओशो, निर्गुण काव्य धारा।*

प्रस्तावना

ओशो का विराट कृतित्व समस्त विषयों को अपने भीतर समेट लेता है। हिंदी साहित्य के विविध संत कवि भी ओशो के साहित्याकाश में विचरण कर रहे हैं। शोध कार्य की उपादेयता के अनुसार संत साहित्य के प्रमुख कवि, जिनकी विशद आलोचना ओशा`ने की है, उनकी चर्चा इस आलेख में हम करेंगे। ज्ञानाश्रयी शाखा के संत कवियों की चर्चा करने से पूर्व इस शोध के अध्ययन के उद्देश्य को स्पष्ट करना उचित होगा।

यह संत काव्य का दुर्भाग्य हीं माना जाएगा कि इस साहित्य की प्रत्येक आलोचना शिल्प को ध्यान में रखकर प्रारंभ होती है। जबकि सच्चा काव्य कभी भी शिल्प पर आश्रित नहीं रहता। हां महान काव्य जिस रूप में सामने आता है वही छंद बन जाता है। तभी तो हम कबीर के काव्य के लिए साखी, सबद, रमैनी जैसे नए छंदों को स्वीकार करने को मजबूर हो जाते हैं, क्योंकि काव्य के केंद्र में भाव होता है, ना कि शिल्प। चरणदास के काव्य की समीक्षा करते हुए ओशो कहते हैं। –

"शब्द बहुत क्षुद्र हैं। भाषा की बहुत गति नहीं है; असली गति मौन की है। शब्द तो यहीं पड़े रह जायेंगे; कंठ से उठे है और कान तक पहुँचते हैं। मौन दूर तक जाता है; अनंत तक जाता है।"[1]

---

* सहायक आचार्य हिंदी, राजकीय महाविद्यालय उनियारा एवंपीएचडी स्कॉलर डॉ केएन मोदी यूनिवर्सिटी, निवाई, राजस्थान।

यही मौन संत काव्य का प्राण है जो परमात्मा को धारण किए हुए हैं। शिल्प को प्रधानता देकर संत काव्य को दोयम दर्जे का मानना वस्तुतः उस महान काव्य के साथ अन्याय है। एक अन्य स्थल पर आचार्य शुक्ल कहते हैं।

"बात यह है कि इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नई बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि , संस्कृत ह्रदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता।"[2]

संत काव्य के प्रति शुक्ल का यह मत किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं कहा जा सकता। संत काव्य ने भारतीय जनमानस में गहरे पेठ की है। संत काव्य की इस सतही आलोचना को निर्मूल सिद्ध करने के लिए शोध की नितांत आवश्यकता है। आचार्य ओशो संत काव्य की महानता को तर्कपूर्ण ढंग से सामने लाते हैं।

"भाषा पर मत जाना, भाव पर जाना। काव्य फूटा उनसे, जब दीया भीतर जलता है, तो रोशनी– उसकी किरणें बाहर फैलनी शुरू हो जाती है। वही संतों का काव्य है।"[3]

वस्तुतः संपूर्ण संत साहित्य उस उपनिषद की तरह है, जो संस्कृत में ना होकर जनमानस की भाषा में है। प्रासंगिक शोध में हम ज्ञानाश्रयी काव्य धारा के उन सभी संतो की चर्चा करेंगे जिन्हें ओशो अपने सम्यक विश्लेषण से उपनिषदों के ऋषि के समान महिमावान स्थापित करते है।

ज्ञानाश्रयी धारा के प्रमुख संत

संत साहित्य में जितने भी प्रमुख कवि हैं उनकी सम्यक समीक्षा ओशो ने अपने प्रवचनों में की है। प्रायः कबीर दास को संत काव्य धारा का प्रवर्तक माना जाता है और संत पलटू तक यह संत परंपरा अनवरत जारी रहती है। इन संत कवियों के स्वरूप को ओशो जिस प्रकार प्रकट करते हैं आगे हम उसे देख सकते हैं।

संत कबीर

संत कबीर के व्यक्तित्व को उकेरते हुए ओशो कहते हैं कि कबीर अनूठे हैं और प्रत्येक के लिए उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है। क्योंकि कबीर से ज्यादा सहज, साधारण आदमी खोजना कठिन है। और अगर कबीर पहुंच सकते हैं, तो सभी पहुंच सकते हैं। कबीर अनपढ़ और गंवार हैं, इसलिए गंवार के लिए भी आशा बंधती है, बे–पढ़े–लिखे हैं इसलिए यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पढ़े–लिखे होने से सत्य का कोई भी संबंध नहीं है। कबीर की जाति–पाति का कोई ठिकाना नहीं कि शायद मुसलमान के घर पैदा हुए, या कि हिंदू के घर बड़े हुए। इसलिए जाति–पाति से परमात्मा का कुछ लेना–देना नहीं है। ओशो समझाते हैं कि कबीर जीवन के लिए बड़ा सूत्र हो सकते हैं। पहले इसे स्मरण में ले लें। इसलिए कबीर को में अनूठा कहता हूं। महावीर सम्राट के बेटे हैं; कृष्ण भी, राम भी, बुद्ध भी; वे सब महलों से आए हैं। कबीर बिलकुल सड़क से आए हैं; महलों से उनका कोई भी नाता नहीं है। कहा है कबीर ने कि कभी हाथ से कागज और स्याही छुई नहीं–'मसी कागज छुओं नहीं, ऐसा अपढ़ आदमी, जिसे दस्तखत करने भी नहीं आते, इसने परमात्मा के परम ज्ञान को पा लिया–बड़ा भरोसा बढ़ता है। तब इस दुनिया में अगर तुम वंचित हो तो अपने ही कारण वंचित हो, परिस्थिति को दोष मत देना। जब भी परिस्थिति को दोष देने का मन में भाव उठे, कबीर का ध्यान करना। कबीर की भाषा सब साधारण जन की भाषा हैं। अनपढ़ आदमी की भाषा है। अगर तुम कबीर को नहीं समझ पाए, तो तुम कुछ भी न समझ पाओगे और अगर कबीर को समझ लिया, तो फिर कुछ भी समझने को बचेगा ही नहीं। और संत कबीर को तुम जितना समझोगे, उतना ही तुम समझ पाओगे कि बुद्धत्व का परिस्थिति से कोई भी संबंध नहीं है। बुद्धत्व तुम्हारी भीतर की अभीप्सा पर निर्भर है– और यह कहीं भी घट सकता है, भले ही झोंपड़ी हो या महल।

"समाधान विज्ञान की खोज है, समाधि धर्म की। दोनों शब्द एक ही धातु से, एक ही मूल शब्द से बने हैं, लेकिन बड़े दूर निकल गए हैं। विज्ञान कहता है, समाधान क्या है समस्या का; धर्म कहता है समाधि। तुम समाधान खोजो ही मत। समाधान खोजा ही न जा सकेगा। रहस्य रहस्य ही रहेगा। तुम कितना ही जानते जाओ, और रहस्य के नए परदे उठते जाएंगे।"[4]

संत धरमदास

कबीर के शिष्य धर्मदास की बात करते हुए ओशो कहते हैं कि आज जिस फकीर की चर्चा हम शुरू करते हैं उसका नाम है, धनी धरमदास। कबीर के शिष्य थे धनी धरमदास। बहुत बड़े धनी थे। बहुत धन कमाया, बहुत पद–प्रतिष्ठा थी। कबीर के पास जब भी आते थे तो कभी कबीर उन्हें कुछ और नहीं, बल्कि धरमदास कह कर ही पुकारते थे। फिर एक दिन फूल खिला। भीतर की आत्मा जगी। गुरु की चोट काम आई। और धरमदास ने सारा धन गरीबों में लुटा दिया। उस दिन कबीर ने उन्हें कहा कि धनी धरमदास! अब तू सच्चा धनी हुआ! अब तेरी खोज बाहर की नहीं है! अब तेरी आंख भीतर की ओर मुड़ी! अब बाहर पर तेरी पकड़ गई! धन हो या पद सब भीतर है क्योंकि परमात्मा भीतर है। धनी धरमदास की भी ऐसी ही अवस्था थी। धन, पद और प्रतिष्ठा थी। अपना मंदिर था। पंडित–पुरोहित घर में पूजा करते थे। और खूब तीर्थयात्रा, शास्त्र का वाचन चलता था, हर प्रकार की सुविधा थी। लेकिन जब तक कबीर से सत्संग न हुआ तब तक जीवन नीरस ही रहा। जब तक कबीर से मिलना न हुआ तब तक जीवन में फूल न खिल पाया। कबीर को देखते ही अड़चन प्रारंभ हुई, कबीर को देखते ही स्वयं के प्रति चिंता पैदा हुई, कबीर को देखते ही दिखाई पड़ा कि मैं तो खाली का खाली रह गया हूं। ये सब पूजा–पाठ, ये सब यज्ञ–हवन, ये पंडित और पुरोहित मेरे किसी काम नहीं आए हैं। मेरी सारी अर्चनाएं व्यर्थ ही चली गई हैं। मुझे मिला क्या? कबीर को देखा तो समझ में आया कि वास्तव में मुझे मिला क्या? मिले हुए को देखा तो समझ में आया कि मुझे मिला क्या? और फिर ऐसा ही हुआ कि धरमदास वापस नहीं लौटे। लौट कर देखा ही नहीं। कायर ही लौट कर देखते हैं। हिम्मतवर आदमी केवल आगे देखता है, कभी पीछे नहीं देखता। घर भी लौट कर नहीं गए। वहीं से सब लुटवा दिया। लुटाने को भी नहीं गए। अब उसके लिए भी क्या जाना! वहीं से खबर भेज दी कि सब बांट दो। जिनको जरूरत है, ले जाएं। जो है सब बांट दो। सारे गांव को कह दो जिसको जो ले जाना है ले जाए। लौट कर वापस भी नहीं गए।

"जब कबीर कहते हैं 'सो जुग बिछुरि न जाए' जो मुझसे आ मिला फिर कभी बिछुड़ता नहीं, तो अब इतना भी बिछोह न सहूंगा। फिर धरमदास कबीर की छाया होकर रहे। कबीर के समाधि–उपलब्ध शिष्यों में एक थे धरमदास। और जिस दिन धरमदास ने सब लुटवा दिया, उस दिन से कबीर ने उनको कहा धनी धरमदास।"[5]

संत दरिया

संत दरिया पर बात करते हुए ओशो समझाते हैं कि संतों के वचन तो गुलाब के फूल हैं। विज्ञान, गणित, तर्क और भाषा की कसौटी पर उन्हें मत कसना, नहीं तो अन्याय होगा। वे तो अर्चनाएं हैं, प्रार्थनाएं हैं। वे तो आकाश की तरफ उठी हुई आंखें हैं। वे तो चांद तारों को छू लेने के लिए पृथ्वी की आकांक्षाएं हैं। उस अभीप्सा को पहचानना। वह अभीप्सा समझ में आने लगे तो संतों का हृदय तुम्हारे सामने खुलेगा और संतों के हृदय में परमात्मा का द्वार है। तुम्हारे सब मंदिर–मस्जिद, तुम्हारे गुरुद्वारे, तुम्हारे गिरजे, परमात्मा के द्वार नहीं हैं। लेकिन संतों के हृदय में निश्चित ही द्वार है। जीसस के हृदय को समझो तो द्वार मिल जाएगा परंतु चर्च में नहीं मिलेगा। मुहम्मद के प्राणों को पहचान लो तो द्वार मिल जाएगा परंतु मस्जिद में नहीं मिलेगा।

ओशो कहते हैं कि ऐसे ही एक अद्‌भुत संत दरिया के वचनों में हम आज उतरते हैं। फूलों की तरह सम्हाल कर लेना। बड़ी नाजुक बात है। ख्याल रखना, सोना जिस पत्थर पर कसते हैं, उस पर फूलों को नहीं कसा जाता है। फूलों को सोने की कसने की कसौटी पर कस–कस कर मत देखना, नहीं तो सभी फूल गलत हो जाएंगे। ओशो समझाते हैं कि दरिया के साथ अन्याय मत करना, यह मेरी पहली प्रार्थना है। ये सीधे–सादे शब्द हैं, पर बड़े गहरे हैं। जितने सीधे–सादे हैं उतने ही गहरे हैं।

"और दरिया कहते हैं– जिस दिन ऐसा दिखाई पड़ा कि बाहर भी वही, भीतर भी वही, और सारे संतों में भी वही–फिर अंततः यह भी दिखाई पड़ा कि जो संत नहीं हैं उनमें भी वही। पहचान बढ़ती गई, गहरी होती चली गई। जन दरिया बंदन करै...!"[6]

संत लाल दास

ओशो कहते हैं कि संत लाल दीवानों में दीवाने हैं। उनके जीवन की यात्रा, उनके संतत्व की गंगा बड़े अनूठे ढंग से प्रारंभ हुई। राजस्थान में जन्मे इस गरीब युवक के जीवन में अचानक दीया कैसे जला; अमावस कैसे एक दिन पूर्णिमा हो गयी–बस वही इनका परिचय है। वही असली परिचय है। न तो संत की जात पूछना न पांत पूछना। पूछना ही मत व्यर्थ की बातें। लेकिन संतत्व की किरण कैसे उतरी, पहली किरण कैसे उतरी? यही जानना ज्यादा जरूरी है क्योंकि उस पहली किरण की तुम भी तलाश में हो। किसी ने सोचा भी न होगा कि लाल के जीवन में ऐसे परमात्मा का पदार्पण होगा। लाल गौना कराकर अपने घर लौटते थे। संगी–साथी, बैड –बाजे, रंग –रौनक, उत्सव की घड़ी थी। रास्ते में लिखमादेसर नाम का गांव पड़ा। वहां पर एक अनूठे संत कुंभनाथ थे जो कि– परमहंस थे। लाल दास गौना कराकर वापस लौट रहे थे कि रास्ते में गांव पड़ा। सोचा कि दर्शन करते चलें। ऐसे संत के गांव से गुजर रहे हैं, जिसकी सुगंध दूर –दूर तक पहुंचने लगी थी। उन्होंने सोचा, दर्शन करते चलें। और ऐसे संत का आशीर्वाद ले लेना उचित है। परंतु संत ने जो आशीर्वाद दिया उससे संत लाल को अपने 'लाल' होने को पता चला। लेकिन वहां संत के पास गये तो कुंभनाथ जीवित समाधि लेने की तैयारी कर रहे थे। गड्ढा खोदा जा चूका था। बस प्रवेश की तैयारी थी। अंतिम विदा–वेला का समय था। उन्होंने प्रसाद बांटा। सबको प्रसाद बांट चुके। लाल को भी प्रसाद मिला। और फिर समाधि में उतरने के पहले, बड़ी अनूठी बात कुंभनाथ ने कही। उन्होंने जोर से पुकारा, चारों तरफ देखा और जोर से पुकारा और कहा– 'और है कोई लेने हारा'?

प्रसाद बंट चुका, सभी को प्रसाद मिल चुका। न पास में प्रसाद है, न कोई लेने वाला है और तब यह आदमी चिल्ला रहा है कि 'और है कोई लेने हारा!' लोग तो एक –दूसरे की तरफ देखने लगे, लेकिन लाल पहुंच गये। हाथ भिखारी की तरह फैलाकर बैठ गये सामने। आंखों से आंसुओं की धार...। कुछ घटा! कुछ वैसा घटा, जैसा बुद्ध और महाकश्यप के बीच घटा था।

ओशो कहते हैं "लेकिन कम–से–कम? बुद्ध ने फूल तो दिया था। कुंभनाथ और लाल के बीच तो फूल भी नहीं दिया–लिया गया। लाल तो उस झुकने में ही रूपांतरित हो गये। मरते –मरते कुंभनाथ एक दिया जला गये, जाते–जाते पूछते हैं: 'और है कोई लेने हारा?' मिल गया एक लेने हारा। थे बहुत लोग। सैकड़ों लोग मौजूद थे। मगर एक ने पुकार सुनी। एक ने हाथ फेलाए। ओशो कहते हैं हजारों लोगों ने यह चमत्कार देखा था। जब उठे तो लाल दूसरे ही व्यक्ति थे।

"लाल की जिंदगी बदल गयी। या यूं कहो, लाल का पहली दफा जन्म हुआ, जिंदगी मिली और कल तक जिसकी खोज ही खबर न ली थी, उस तरफ आंख गयी। उसकी पहचान हुई। अमृत से संबंध जुड़ा। एकदम जैसे भभक उठे। ज्योतिर्मय हो गये!"[7]

संत गुरु नानक

गुरु नानक ज्ञानाश्रयी धारा के अद्‌भुत संत हैं और ओशो ने इनके काव्य के रहस्य को प्रभावी ढंग से प्रकट किया है। ओशो समझाते हैं कि नानक का मार्ग बहुत भिन्न है उन्होंने योग और तप नहीं किया वरन् गीत गाकर ही उस प्रभु को प्राप्त कर लिया परंतु उन्होंने गीत इतने प्राण से गाया है कि उनके गीत ही योग, तप और ध्यान हो गए। नानक को जपुजी के नाम से जाना जाता है नानक से जपुजी की यात्रा के रहस्य को उद्‌घाटित करते हुए ओशो समझाते हैं कि एक दिन नदी के किनारे रात के अंधेरे में, अपने साथी और सेवक मरदाना के साथ वे नदी तट पर बैठे थे। अचानक उन्होंने अपने वस्त्र उतार दिए और बिना कुछ कहे नानक उस नदी में उतर गए। मरदाना ने थोड़ी देर तो प्रतीक्षा की, फिर वह चिंतित होकर खोजने लग गया कि वे कहां खो गए। फिर वह चिल्लाने लगा, किनारे–किनारे दौड़ने लगा कि कहां हो? कुछ बोलो! आवाज दो! उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि नदी की लहर–लहर से एक आवाज आने लगी, धैर्य रखो, धैर्य रखो। परन्तु मरदाना को नानक की कोई खबर नहीं मिली। वह भागकर गांव पहुंचा और उसने आधी रात लोगों को जगा दिया। भीड़ इकट्ठी हो गई। नानक को सभी लोग प्यार करते थे। सभी को नानक में कुछ होने की संभावना दिखाई पड़ती

थी। पूरा गांव रोने लगा, भीड़ इकट्ठी हो गई। पूरी नदी तलाश डाली। इस कोने से उस कोने तक लोग भागते–दौड़ते उन्हें ढूंढने की कोशिश करने लगे। लेकिन नानक का कोई पता न चला। तीन दिन बीत गए। पूरे गांव ने मान ही लिया कि नानक को कोई जानवर खा गया। या वे डूब गए, बह गए, या किसी खाई–खड्ड में उलझ गए। परंतु तीसरे दिन रात अचानक नानक नदी से प्रकट हो गए। जब वे नदी से प्रकट हुए तो जपुजी उनका पहला वचन है। यह घोषणा उन्होंने की। नानक जब तीन दिन के लिए नदी में खो गए तो कहानी कहती है कि वे प्रकट हुए परमात्मा के द्वार में। परमात्मा का उन्हें अनुभव हुआ। जिसके लिए पुकारते थे उस प्यारे परमात्मा को आंखों के सामने जाना। जिसके लिए गीत गाते थे, जो उनके हृदय की धड़कन–धड़कन में प्यास बना था, उस ईश्वर को सामने पाया और तृप्त हुए। फिर परमात्मा ने उन्हें कहा, अब तू जा और जो मैंने तुझे दिया है, वह पूरी दुनिया के लोगों को बांट। परमात्मा से लौट कर जपुजी उनकी पहली भेंट है। नानक के बाबत ओशो समझाते हैं कि –

"धार्मिक व्यक्ति वैज्ञानिक से बड़ा वैज्ञानिक, कलाकार से बड़ा कलाकार है, क्योंकि उसकी खोज संयुक्त है। विज्ञान और कला द्वंद्व है। धर्म समन्वय है, सिन्थेसिस है।"[8]

संत रैदास

ज्ञानाश्रयी शाखा के संतों में रैदास की महिमा का बखान करते हुए ओशो समझाते हैं कि भारत का आकाश संतों के सितारों से भरा है। अनंत–अनंत सितारे हैं, यद्यपि ज्योति सबकी एक ही है और संत रैदास उन सब सितारों में ध्रुवतारा है– और वह इसलिए कि शूद्र के घर में पैदा होकर भी काशी के पंडितों को भी स्वीकार करने को मजबूर कर दिया । ब्राह्मणों ने अपने शास्त्रों में महावीर का उल्लेख नहीं किया। बुद्ध की जड़ें काट डालीं, बुद्ध के विचार को उखाड़ फेंका। लेकिन रैदास में कुछ बात है कि रैदास को नहीं उखाड़ सके और रैदास को स्वीकार भी करना पड़ा। रैदास के गुरु हैं रामानंद जैसे अद्‌भुत व्यक्ति और रैदास की शिष्या है मीराबाई जैसी अद्‌भुत स्त्री। इन दोनों के बीच में रैदास की चमक निश्चित ही अनूठी है।

संत रामानंद को लोग भूल ही जाते अगर रैदास और कबीर न होते। वास्तव में रैदास और कबीर के कारण ही रामानंद याद किए जाते हैं। जैसे फल से वृक्ष पहचाने जाते हैं वैसे शिष्यों से गुरु पहचाने गए। रैदास का अगर एक भी वचन न बचता और सिर्फ मीरा का यह कथन बचता कि 'गुरु मिल्या रैदास जी' तो भी पर्याप्त था। क्योंकि जिसको मीराबाई गुरु कहे तो निश्चित ही वे अद्‌भुत रहें होंगे। मीरा कुछ ऐसे–वैसे को गुरु नहीं कह सकती थी, जब तक कि परमात्मा बिलकुल साकार न हुआ हो। किसी साधारण व्यक्ति को वह गुरु नहीं कह सकती थी। आश्चर्य तो यह है कि कबीर को भी मीरा ने गुरु नहीं कहा है, रैदास को गुरु कहा।

"रैदास इसलिए भी स्मरणीय हैं कि रैदास ने वही कहा है जो बुद्ध ने कहा है। लेकिन बुद्ध की भाषा ज्ञानी की भाषा है, रैदास की भाषा भक्त की भाषा है, प्रेम की भाषा है। शायद इसीलिए बुद्ध को तो उखाड़ा जा सका, रैदास को नहीं उखाड़ा जा सका।"[9]

संत दयाबाई एवं संत सहजोबाई

संत चरणदास के सहजो बाई और दया बाई दो अभूतपूर्व शिष्याएं हुई। ओशो स्पष्ट करते हैं कि दोनों के पद एक ही गुरु के चरणों में पैदा हुए, दोनों के पदों में एक ही राग रंग है। थोड़े–बहुत भेद व्यक्तित्व के भेद हैं। भेद इतने कम हैं, इसलिए मैंने पहली श्रृंखला जो सहजो बाई पर दी, उसका नाम रखा था दया के पद के आधार पर। दया का पद है–

'बिन दामिन उंजियार अति, बिन घन परत फुहार।
मगन भयो मनुवां तहां, दया निहार–निहार।।'

यह पद थे सहजो के, नाम दिया था दया की वाणी से। इस नई श्रृंखला को, जिसे हम आज शुरू कर रहे हैं, पद हैं दया के, नाम दे रहा हूं सहजो की वाणी से–

'जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अंजुलि माहिं।।'

ओशो अपने जीवन में बहुत से संबुद्ध पुरुषों पर बोले परंतु संबुद्ध स्त्रियों में वह सबसे पहले सहजो बाई पर बोले। वे कहते हैं –मैं कबीर, फरीद, नानक, बुद्ध, महावीर और सैकड़ों मुक्त पुरुषों पर बोला, परंतु वह बात इकसुरी थी। आज दूसरे स्वर को जोड़ता हूं। उस दूसरे स्वर को समझने के लिए, उस पहले स्वर ने तुम्हें तैयार किया है। क्योंकि एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटती है– पुरुष भी जब मुक्ति के आखिरी सोपान पर पहुंचाता है, तो वह स्त्री जैसा हो जाता है, स्त्रीवत हो जाता है। यही तो दादू ने कहा कि आशिक माशूक हो गया। जो प्रेमी था, वह अब प्रेयसी हो गया। ओशो आगे समझाते हैं कि पुरुष और स्त्री दो आयाम हैं। और दोनों के भेद को बारीकी से पहचान लोगे तो सहजोबाई के पद स्पष्ट हो जाएंगे। तुम पुरुष के ढंग से उन्हें समझने की कोशिश मत करना।

"पुरुष को प्रेम में भी बंधन लगता है, स्त्री को प्रेम में मुक्ति लगती है। अब यह भाषा, बड़ी दुनिया अलग–अलग है इन दो भाषाओं की। स्त्री के लिए प्रेम मुक्ति, पुरुष के लिए प्रेम बंधन।"[10]

संत शेख फरीद

संत काव्य के एक और भक्त शिरोमणि शेख फरीद के व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हुए ओशो कहते हैं की संत शेख फरीद तो प्रेम मार्ग के पथिक हैं और जैसा प्रेम का गीत फरीद ने गाया है, वैसा तो कोई और गा ना सका। फरीद के काव्य की समीक्षा करते हुए ओशो उनके प्रेम के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट करते हैं। उनका कहना है की पहली बात जिसे तुम प्रेम कहते हो फरीद उसे प्रेम नहीं कहते। अहंकार से भरा हुआ तुम्हारा प्रेम तो सिर्फ दुख तक पहुंचा देता है। प्रेम में तुमने नरक जाना है और फरीद इस प्रेम की बात नहीं कर रहे। ओशो समझाते हैं कि जिस प्रेम की फरीद बात कर रहे है, वह तो तभी पैदा होता है जब तुम मिट जाते हो अर्थात तुम्हारा अहंकार मिट जाता है। उस प्रेम का फूल तुम्हारी कब्र पर उगता है। वह प्रेम तुम्हारी राख से पैदा होता है। तुम्हारा प्रेम तो अहंकार की सजावट है, जिसमें तुम दूसरे को वस्तु बना डालते हो, उस पर मालकियत करना चाहते हो। जबकि संत फरीद जिस प्रेम की बात कर रहे हैं वह ऐसा प्रेम है, जहां तुम दूसरे को अपनी मालकियत देते हो और तुम स्वेच्छा से समर्पित हो जाते हो। साधारण प्रेम तो सशर्त है और फरीद का प्रेम बेशर्त। साधारण प्रेम बेशर्त नहीं हो सकता और प्रेम जब तक बेशर्त ना हो तब तक प्रेम ही नहीं होता। ओशो इसके पश्चात फरीद के प्रेम की दूसरी विशेषता बताते हैं कि वहां प्रेम का विचार नहीं वरन प्रेम का भाव होता है। फरीद का प्रेम सोच विचार वाला प्रेम नहीं है। यह तो पागल प्रेम है, यह भाव का प्रेम है। और दुर्भाग्य से भाव तो तुम बिल्कुल ही भूल गए हो। तुम जो भी करते हो वह मस्तिष्क से चलता है और हृदय से तुम्हारे संबंध खो गए हैं। फिर ओशो समझाते हैं कि फरीद जिस प्रेम की बात करेंगे, वह भाव है और भाव को सिखाने का कोई उपाय नहीं है। उसके लिए सिर्फ थोड़ा बुद्धि को शिथिल करना पड़ता है। और भाव तो सदा से मौजूद हैं, तुम लेकर आए हो। भाव तुम्हारी आत्मा है। इस प्रकार फरीद का प्रेम हमारे सांसारिक प्रेम जैसा नहीं हैं और वहीं प्रेम परमात्मा तक पहुंचा देता है।

"जब तक लोभ है, फरीद कहते हैं, वहां प्रेम ना हो सकेगा। प्रेम की संभावना ही तब है जब लोभ गिर जाए। जिसने लोभ को पहचान लिया और लोभ को गिरा दिया, उसके जीवन में प्रेम का आविर्भाव होता है।"[11]

संत सुंदरदास

संत साहित्य में सुंदरदास ऐसे संत हुए जिनके पास अलौकिक भावों का सामर्थ्य तो था ही, साथ ही उनकी काव्य कला भी अत्यंत उत्कृष्ट थी। काव्य कला की ऐसी उत्कृष्टता अन्य किसी भी संत कवि के पास नहीं है। ओशो कहते हैं कि सुंदरदास को संत कवियों में काव्य कला की दृष्टि से महाकवि कहा जा सकता है। सुंदर दास के पिता का नाम परमानंद और मां का नाम सती था और वास्तव में आनंद और सत्य के मिलने से ही एक संत का जन्म होता है। सुंदर दास का सन्यास भी अनूठे ढंग से संपन्न हुआ। कहते हैं कि जब वह सात वर्ष के थे, उस छोटी सी उम्र में ही वे सन्यासी हो गए। उनके गुरु संत दादूदयाल थे। गुरु दादू ने अपने जीवन में जितने लोगों को जगाया उतना किसी अन्य गुरु ने नहीं जगाया। दादूदयाल के बहुत से प्रसिद्ध शिष्य हुए उनमें सुंदरदास भी एक थे। ओशो आगे समझाते हैं कि अभी यह बालक तो नया–नया था। दादूदयाल ने इसे

सुंदर नाम दिया। सुंदरदास के काव्य को समझाते हुए ओशो कहते हैं कि सुंदरदास का हाथ पकड़ो तो वे तुम्हें उस सरोवर के पास ले चलेंगे, जिसकी एक घूंट भी सदा के लिए तृप्त कर जाती है। लेकिन संत तो बस सरोवर के पास ले जाकर सरोवर सामने कर देंगे। अंजुली तो अपनी तुम्हें ही बनानी पड़ेगी, झुककर पीना तो तुम्हें ही पड़ेगा। लेकिन अगर तुमने सुंदरदास को समझा तो मार्ग में वे प्यास को भी जगाते चलेंगे। साथ ही भीतर सोये हुए चकोर को परमात्मा रूपी चांद देखने के लिए प्रेरित करेंगे। संत सुंदर तुम्हें याद दिलायेंगे कि यहां मिलने को बहुत कुछ है। सिर्फ खोजने की कला आनी चाहिये। यहां पाने को बहुत कुछ है। स्वयं परमात्मा यहां छिपा है। लेकिन तुम गलत खोजते रहे हो। जहां हीरे की खदानें हैं वहां तुम कंकड़–पत्थर बीन रहे हो। वे तुम्हारी प्यास जगायेंगे, तुम्हारे चातक, तुम्हारे चकोर को जगायेंगे। तुम्हारे भीतर एक प्रज्वलित अग्नि पैदा करेंगे। तुम्हारे भीतर प्यास की ऐसी घड़ी जरूर आ जायेगी, जब न–मालूम किस गहराई से हरि बोलौ हरि बोल, ऐसे बोल तुम्हारे भीतर उठेंगे। तभी तुम इन सूत्रों का समझ पाओगे।

''सुंदरदास अकेले, सारे निर्गुण संतों में, महाकवि के पद पर प्रतिष्ठित हो सकते हैं। जो कहा है वह तो अपूर्व है ही; जैसे कहा है, वह भी अपूर्व है। संदेश तो प्यारा है ही, संदेश के शब्द–शब्द भी बड़े बहुमूल्य हैं।''[12]

संत पलटूदास

संत बाबा पलटू दास ज्ञानाश्रयी धारा के प्रायः आखिरी संत माने जाते है। ओशो ने संत पलटू के काव्य और व्यक्तित्व का प्रभावी ढंग से अंकन किया है। वह कहते हैं अजहूं चेत गंवार! अब भी जाग! अब भी अपने होश को संभाल! ये प्यारे पद एक अपूर्व संत बाबा पलटू के हैं। तुमने इन के काव्य में डुबकी मारी तो बहुत हीरे खोज पाओगे। पलटूदास के बारे में बहुत ज्यादा ज्ञात नहीं है। संत तो पक्षियों जैसे होते हैं। ये आकाश पर उड़ते जरूर हैं, लेकिन अपने पदचिह्न नहीं छोड़ जाते। पलटूदास तो बिलकुल ही अज्ञात संत हैं। इनके संबंध में बड़ी थोड़ी–सी बातें जो उंगलियों पर गिनी जा सकें पता चलती है। एक तो उनके ही वचनों से गुरु के नाम का पता चलता है। उनके गुरु का नाम गोविंद था। गोविंद एक परम संत भीखा के शिष्य और पलटू के गुरु थे, एक तो यह बात ज्ञात है। दूसरी बात, जो उनके पदों से ज्ञात होती है, वह यह कि वे वणिक, वैश्य, या बनिया थे। वह भी इसलिए पता चलता है कि उन्होंने अपने काव्य में वैश्य की भाषा का उपयोग किया है। संत पलटू बड़ी मस्ती–आनंद की बात करते है। कहते है कि मैं राम का मोदी, राम का बनिया हूं और छोटी–मोटी दुकान नहीं करता सीधे राम को बेचता हूं। इसके पश्चात ओशो कहते हैं कि पलटू के वचनों से तीसरी बात यह पता चलती है कि वह दो भाई थे और दोनों ही पलट गए। उन्होंने बाहर के धन की चिंता छोड़ दी और भीतर का धन खोजने लगे और केवल खोजने नहीं लगे, वरन् खोज ही लिया। बाहर तो धन खोज कर भी कहां कौन खोज पाता है। इसी सत्य को जानकर एक दिन दोनों भाई बदल गए। इस बदलाव के कारण गुरु ने दोनों को पलटू नाम दे दिया। एक भाई को कहा पलटूप्रसाद और दूसरे भाई को कहा पलटूदास। यह शब्द गुरु ने 'पलटू' बड़ा प्यारा दिया। ईसाई जिसको कनवर्सन कहते हैं अथवा जिसको वैज्ञानिक एक सौ अस्सी डिग्री का रूपांतरण कहते हैं। दोनों भाई एकदम पलट गए। कहां सांसारिक दौड़ में जाते थे और ठीक उलटे चल पड़े।

"पलटू नाम का अर्थ हुआ क्रांति। एक बड़ी अपूर्व क्रांति हुई और गुरु ने खूब प्यारा नाम दिया! बड़ा सांकेतिक नाम दिया। दो–दो चार–चार पैसे के लिए दुकान करते रहे होंगे और जब पलट गए तो ऐसी क्रांति घटी!''[13]

निष्कर्ष

इस प्रकार ज्ञानाश्रयी धारा के लगभग सभी प्रमुख संतो के काव्य के रहस्य को ओशो ने सुंदरता से प्रकट किया है। आचार्य शुक्ल जैसे हिंदी के विभिन्न आलोचक जहां केवल कबीर, सुंदरदास आदि एक–दो संतो के काव्य को ही प्रभावी मानते हैं वही ओशो ज्ञानाश्रयी धारा के प्रत्येक संत को और उसके काव्य को श्रेष्ठतम घोषित करते हैं। ओशो के अनुसार इस धारा के प्रत्येक संत का काव्य अपने भीतर उपनिषदों को समेटे हुए हैं। उपनिषद अपने सूत्रों में जो परमात्मिक रहस्य उजागर करते हैं, प्रत्येक संत कवि के काव्य में वही रहस्य छिपा हुआ है और ओशो ने अद्‌भुत ढंग से उस रहस्य को प्रकट करने में सफलता प्राप्त की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओशो, नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास), पृष्ठ 32, किंडल एडिशन
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 363, किंडल एडिशन
3. ओशो, वाजिद कहे पुकार के (संत वाजिद), पृष्ठ 38, डायमंड पॉकेट बुक्स
4. ओशो, तेरा साईं तुज्झ में, कबीर वाणी, पृष्ठ 106, डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
5. https://oshostsang.wordpress.com/2018/08/15/%
6. https://oshostsang.wordpress.com/2018/07/10/%e0
7. https://oshostsang.wordpress.com/2018/07/24/%e0%
8. https://oshostsang.wordpress.com/2018/07/03/%e0%
9. https://oshostsang.wordpress.com/2018/07/15/%e0%a4
10. ओशो, बिन घन परत फुहार, सहजो वाणी, पृष्ठ 15, साधना फाउंडेशन, पुणे
11. ओशो, अकथ कहानी प्रेम की, (संत शेख फरीद) पृष्ठ 178, डायमंड बुक्स
12. ओशो, हरि बोलौ हरि बोल, सुंदरदास, पृष्ठ 25, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली
13. ओशो, अजहूं चेत गंवार, पलटू, पृष्ठ 7, डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली।

❖◆❖